है। जबकि 2000 में प्रति व्यक्ति माँग केवल 634 घनमीटर थी। अगर पिछले नौ सालों में यह माँग बढ़ भी गई होगी तो यह 700 घनमीटर से अधिक नहीं हो सकती। तो फिर व्यवधान कहाँ है? व्यवधान हमारे समाज के भीतर ही मौजूद है। दिल्ली में दिल्ली जल बोर्ड के समानान्तर दबंग लोग और अवैध जल माफ़िया पानी का कारोबार कर रहे हैं। इन लोगों ने पानी के पाइपलाइन बिछाकर कनेक्शन बाँट रखे हैं। 1300 करोड़ से ज़्यादा के इस सालाना कारोबार में 1900 सम्पत्तियाँ निजी हाथों में दी जा चुकी हैं। इसमें 600 करोड़ की लागत वाला दिल्ली का सोनिया विहार संयन्त्र भी है जो कि स्वेज डेगरामेण्ट कम्पनी ने लिया है जिसके हाथों में रिठाला संयन्त्र भी है। अलग-अलग ठेकेदारों के हाथों में एक हज़ार ट्यूबवेल, 300 सीवेज और बूस्टर पम्पिंग स्टेशन व 600 टैंकर देना भी शामिल है।

ग़ौरतलब बात यह है कि उदारीकरण, निजीकरण की नीतियों के चलते देशी-विदेशी कम्पनियाँ प्रचुर मात्रा में भू-जल स्तर का दोहन कर उन्हें बोतल में पैक करके यहीं की जनता को बेचकर अपनी तिजोरियाँ भर रही हैं। अगर देश के नदियों की बात की जाए तो गंगा-यमुना समेत देश की तमाम नदियाँ आज प्रदूषित हो चुकी हैं। एक तरफ़ तो पूँजीपति प्राकृतिक सम्पदा और श्रम की लूट को लगातार जारी रखता है, दूसरी ओर उसी की फ़ैक्टरियों, कारखानों का टनों औद्योगिक रासायनिक कचरा नदियों को विषैला बनाने में कोई चूक नहीं करता है। आज ये हालात हैं कि देश की तमाम नदियों के पानी में घातक रसायन और धातुओं के स्तर तयशुदा सीमा से काफ़ी ज़्यादा पाया गया है। जल के नमूने में आर्सेनिक, बेंजीन और सीसे की ख़तरनाक मात्रा पाई गई है। इस पानी के इस्तेमाल से आयु कम होने के अलावा कैंसर जैसी बीमारियों का जन्म होता है। हैजा, पेचिश जैसी आम बीमारियों के साथ-साथ दिमाग़ी और आनुवांशिक रोगों का भी जन्म होता है। कुछ बातों पर ग़ौर फ़रमाइये :

– सैण्ट्रल फूड एण्ड टेक्नोलॉजिकल रिसर्च इंस्टीट्यूट (मैसूर) ने अपने कई अध्ययनों में पाया है कि मैसूर के आसपास के इलाक़ों में उगाई जाने वाली सब्जियों में सीसा, क्रोमियम, आर्सेनिक और पारा होता है। इसकी वजह यहाँ की औद्योगिक इकाइयों से निकलने वाला कचरा है।

– पंजाब कृषि विश्वविद्यालय ने भी अपनी जाँच में औद्योगिक इकाई से सब्जियों के प्रदूषित होने की सत्यता प्रमाणित की है।

– अभी तक जो कुछ भी सामने आया है वह एक छोटा सा ट्रेलर है असली फ़िल्म तो 'इंडिया इज़ शाइनिंग' तो कभी 'भारत के विकास' के रेशमी और जगमगाते परदे के पीछे अबाध गति से चलायमान है। सरकार तभी जागती है जब समस्या ख़तरे के निशान से ऊपर हो जाती है और लोगों के आक्रोश के फूटने की स्थिति पैदा हो जाती है। आख़िरकार सरकार ने मजबूर होकर छः सौ छब्बीस ज़िलों में से एक सौ सत्तर ज़िलों को सूखाग्रस्त घोषित कर दिया है। मानसून की कमी को सरकार ने सूखे के लिए जिम्मेदार ठहराते हुए विपक्ष से प्रश्न पूछने का मौक़ा भी हथिया लिया है।

असल बात तो यह है कि सत्ता के गलियारे के लोग पक्ष में बैठें या विपक्ष में इस अमानवीय और खोखली हो चुकी पूँजीवादी व्यवस्था के जुवे को जनता के कन्धों पर लादे रखना चाहते हैं। तब फिर क्या सरकार से अपेक्षा की जाए की वह गिरते भू-जल स्तर को ठीक करे, आम आबादी तक साफ़, स्वच्छ जल की आपूर्ति करे तथा नदियों को साफ़ करके इस्तेमाल करने लायक बना सके तथा अनेक अन्य उपायों से पानी के संकट से जनता को सदा के लिए मुक्ति प्रदान करे! सरकार अपनी नीतियों के द्वारा अपनी पक्षधरता साबित कर चुकी है। निर्णय हमें लेना है कि हमारी पक्षधरता किस ओर है। क्योंकि वास्तविक जीवन में दर्शक कोई नहीं होता, सबको ज़िन्दगी में हिस्सा लेना पड़ता है।

– गौरव

'वाह री न्यायपालिका' – तेरी जय हो!

प्रोफ़ेसर सभ्भरवाल हत्याकाण्ड का निर्णय आने के बाद देश के कई बड़े अखबारों ने टिप्पणी की कि देश की न्यायपालिका का चरित्र पर एक बार फिर सवाल खड़े हो गये हैं। क्या वाक़ई ऐसा हुआ है, या फिर देश की न्यायपालिका का मूल चरित्र ही ऐसा है। अव्वलन तो दुनिया के इस सबसे विशाल लोकतन्त्र के बारे में यह तर्क दिया जाता है कि इसके तीन स्तम्भों में से दो – विधायिका और कार्यपालिका, तो खुले और बिल्कुल नंगे तौर पर पूँजीपतियों की सेवा करते हैं, लेकिन न्यायपालिका अभी भी वर्गीय सीमाओं को लाँघकर न्याय की रक्षा करती है। शहरी मध्यवर्ग इसी तर्क के बल पर व्यापक आबादी को लोकतन्त्र की दुहाई देता रहता है। अगर प्रोफ़ेसर हरभजन सिंह सभ्भरवाल के हत्याकाण्ड और उसके बाद की पूरी क़ानूनी प्रक्रिया पर नज़र डाली जाये तो यह बात स्वतः ही स्पष्ट हो जायेगी कि न्यायपालिका और विधायिका एवं कार्यपालिका के बीच कोई चीन की दीवार नहीं होती (यह इस बात का निषेध नहीं है कि उनका कोई स्वतन्त्र चरित्र नहीं होता)।

प्रोफ़ेसर सभ्भरवाल, उज्जैन के माधव कॉलेज के राजनीति विज्ञान विभाग के अधयक्ष थे। 6 अगस्त, 2006 में कॉलेज में एक आदेश के अनुसार छात्रसंघ चुनावों को स्थगित किया जा रहा था। इसी को लेकर प्रो. सभ्भरवाल छात्रों को समझाने के प्रयास कर रहे थे। इसी दौरान छात्रों के एक समूह द्वारा, जिसमें मुख्यतः ए.बी.वी.पी. के कार्यकर्त्ता थे, उनके ऊपर हमला कर दिया। हमला इतना नृशंस और अपराधी क़िस्म का था, कि उन्हें पीट-पीट कर लहूलुहान कर दिया गया।

अस्पताल ले जाते हुए ही वह क़रीबन मृत हो चुके थे। पोस्टमार्टम रिपोर्ट के अनुसार उनकी मृत्यु का मुख्य कारण पसलियों का टूटना और हृदय आघात (हार्ट अटैक) था। इस घटना के दौरान सैकड़ों लोग, जिसमें हमारे सम्भ्रात घरों से आने वाले छात्र, प्रशासन के अधिकारी और बहुत से प्रोफ़ेसर उपस्थित थे, लेकिन उन्हें इसमें हस्तक्षेप करने की कोई ज़रूरत नहीं महसूस हुई।

चूँकि मामला एक कॉलेज के प्रोफ़ेसर का था, इसलिए मामला न्यायालय तक पहुँचा (जहाँ 12 जुलाई, 2009 को नागपुर की एक सेशन कोर्ट द्वारा ए.बी.वी.पी. के 6 कार्यकर्त्ताओं को जो कि मुख्य अभियुक्त थे बाइज़्ज़त बरी कर दिया गया। निर्णय सुनाते वक्त न्यायधीश श्री नितिन दाल्वी ने कहा कि प्रो. सभ्भरवाल के साथ न्याय नहीं किया जा सकता, क्योंकि अभियोगी पक्ष, यह साबित नहीं कर सका कि ए.बी.वी.पी. के वे 6 कार्यकर्त्ता उस दिन घटनास्थल पर मौजूद थे। पूरे ट्रायल के दौरान क़रीब 69 लोगों को तलब किया गया, परन्तु उसमें से कोई भी अपराधियों को पहचान नहीं सका। इस पूरे घटनाक्रम के दौरान मध्यप्रदेश सरकार उसके मुखिया श्री शिवराज सिंह चौहान की क्या भूमिका रही, यह जगज़ाहिर है। उन्होंने शुरू से ही कहा था, कि प्रो. सभ्भरवाल की मृत्यु एक आम घटना थी जिसमें ए.बी.वी.पी. के कार्यकर्त्ताओं का कोई लेना-देना नहीं था। शुरू से ही उन्होंने अभियुक्तों को संरक्षण देने के अलावा माधव कॉलेज के चपरासी से लेकर प्रोफ़ेसर तक सबकी भूमिका तय करने में कोई कोताही नहीं छोड़ी। पूरे घटनाक्रम के साथ 'न्याय' हो, इसके लिए उन्होंने पूरे मसले की स्वयं ही देखरेख की और खुले तौर पर इसे स्वीकार भी किया। उन्होंने शुरू से ही यह बयान दिया कि प्रो. सभ्भरवाल की मृत्यु एक आम घटना थी, जिससे ए.बी.वी.पी. के कार्यकर्त्ताओं का कोई लेना-देना नहीं है। निर्णय आने के बाद भी उन्होंने 'न्याय की विजय' का उद्घोष किया। वैसे शिवराज सिंह चौहान जैसे फ़ासिस्ट से यही उम्मीद थी, जिस पर पूरा मीडिया और शहरी मध्यवर्ग इस तरह हो-हल्ला मचा रहा है, मानो यह पहली बार हुआ हो। जगदीश टाइटलर, नरेन्द्र मोदी, योगी आदित्यनाथ आदि जब क़ानूनी सरंक्षण के साथ छुट्टा घूम सकते हैं तो भला ए.बी.वी.पी. के यह 6 गुण्डे क्यों नहीं।

सवाल यह है कि क्या इन सभी घटनाओं के केन्द्र में महज न्यायपालिका की असफलता है, या तलब किये गये गवाहों की दुनियादारी या कुछ और। अगर हाँ तो उन लाखों घटनाओं का क्या जिसमें बलात्कार से लेकर जला कर मार देने वाली घटनाओं के केस जो न्यायालय की दहलीज और मीडिया के कानों तक पहुँच भी नहीं पाते!

– शिवार्थ पाण्डेय

जपो स्वदेशी-जपो स्वदेशी, पूँजी लाओ रोज़ विदेशी

स्वदेशी का राग अलापने वाला संघ परिवार (आर.एस.एस.) अपने राजनीतिक मंसूबों के लिए यह विदेशी चन्दे का इस्तेमाल करने से भी नहीं चूकती। इसी कड़ी में संघ परिवार की विभिन्न शाखाओं को विदेशी चन्दा मिलने की बात सामने आई। फ़ण्ड जुटाने का काम यह तथाकथित ''देशभक्त'' काफ़ी लम्बे समय से गौरवशाली हिन्दू अतीत के ख़तरे के नाम पर करते रहे हैं। इसी कड़ी में 9 अगस्त 2009 के नई दुनिया अख़बार के पहले पन्ने पर छपी खबर से यह सच्चाई एक बार फिर सामने आई। सीबीआई जाँच के दौरान पाया गया कि संघ परिवार के विभिन्न संगठन को विवेकानन्द के नाम पर, शिक्षा के नाम पर (भगवाकरण के लिए), राम के नाम पर, आदिवासियों के कल्याण के नाम पर, आपदा के नाम पर करोड़ो रुपये का विदेशी चन्दा मिला है। मसलन, 2006-07 में विदेशी चन्दा पाने वाले संगठनों मे विवेकानन्द रॉय मेमोरियल केन्द्र (तमिलनाडू) को 54 लाख 53 हजार 346 रूपये मिले। उतर प्रदेश में सक्रिय शिक्षा भारती संस्था को 27 लाख 56 हजार 400 रूपये मिले तो इसी राज्य में सक्रिय श्री राम विकास समिति को 22 लाख 11 हजार 870, उत्तराखण्ड में दैवी आपदा पीड़ित सहायता समिति को 17 लाख 90 हजार 800, झारखण्ड में बनवासी कल्याण केन्द्र को 6 लाख 50 हजार 430 और केरल में सक्रिय वनवासी आश्रम ट्रस्ट को 5 लाख 59 हजार 876 रुपये मिले।

विदेशी चन्दे की बात तो एक तरफ़ संघ परिवार का विचार और आचार से भी स्वदेशी नहीं है। और न ही गणवेश (यूनीफ़ार्म) और नाम से स्वदेशी। नाम के सन्दर्भ में खुद आर.एस.एस. के सर्वोच्च नेतृत्व ने हिटलर की नाज़ी पार्टी (नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी का संक्षिप्त रूप) और इटली की फ़ासीवादी पार्टी (इतालवी भाषा में 'फ़ासी' शब्द संघ का पर्यायवाची होता है) की प्रेरणा को अपने लेखन में स्वीकारा था और यहाँ तक कि संघ के स्वयंसेवकों का गणवेश (यूनीफ़ार्म) भी स्पेनी और इतालवी फ़ासिस्टों से प्रेरित है। दुनिया में अगर इटली के फ़ासिस्टों की पहचान 'काली कमीज़' और स्पेन के फ़ासिस्टों की पहचान 'भूरी कमीज़' वालों के रूप में थी तो संघियों ने अपनी पहचान 'खाकी निकर' और 'काली टोपी' वालों के रूप में कायम की। अगर वैचारिक सन्दर्भ में बात करें तो डा. केशवराव बलीराम हेडगेवार के सहयोगी डॉ. मुंजे ने इटली के नेता मुसोलिनी से मुलाक़ात तक की थी। और वैचारिक प्रसाद लेकर स्वदेश लौटे थे। संघ परिवार का सांगठनिक ढाँचा और कार्यप्रणाली भी कुछ हिटलर की नाज़ी पार्टी और मुसोलिनी की फ़ासीवादी पार्टी से अद्भुत ढंग से मेल खाता है न कि भारतीय संस्कृति के किसी अध्याय से। इसका सांगठनिक ढांचा न तो किसी तरीक़े के संविधान को मानता